

षष्ठ मंडल

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

देवात्मा-हिमालय प्रकरण

पुण्यं पर्वावतारस्य भागीरथ्यास्तु विद्यते ।
 भगवत्या ज्येष्ठशुक्लदशमी तिथिरुत्तमा ॥ १ ॥
 तस्मिन्नेव दिने तस्य हिमाद्रेर्देवतात्मनः ।
 गर्भाद् विनिसृतायास्तु गंगाधरजटालयात् ॥ २ ॥
 च्युताया दिव्यतोयाया अमृताम्भस एव च ।
 कृते श्रद्धाञ्जलीन् कर्तुमवगाहनजं तथा ॥ ३ ॥
 लब्धुं लाभसंख्यास्तु जनाः श्रद्धालवः सदा ।
 समायान्ति मुदा दूरदेशाद् यात्रा प्रसंगतः ॥ ४ ॥
 गंगोत्रीं गोमुखं यान्ति शिवलिंगतपोवनम् ।
 कैलासं नन्दनं मेरुं मानसं स्फटिकोपमम् ॥ ५ ॥
 स्वर्गारोहण - भूभागं मार्गमुल्लङ्घ्यदुर्गमम् ।
 यान्ति लोका वदन्त्येव हिमाद्रेर्हृदयं च यत् ॥ ६ ॥
 विद्यते चेदमेवाहो महाप्रज्ञात्मनः प्रियम् ।
 गायत्र्या जन्मनश्चापि पुण्यं दिव्यं हिमं महत् ॥ ७ ॥
 स्वर्गे सुगन्धसंयोग इव चैतादृशाः शुभाः ।
 क्वचनावसरा लोके दृश्यन्ते पुण्यदायिनः ॥ ८ ॥
 टीका—भगवती भागीरथी का अवतरण पर्व, ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि का है। उस दिन देवात्मा हिमालय के गर्भ से, शिवजी की से प्रादुर्भूत अमृत सलिला जाहूवी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए दूर-दूर देशों से प्रसन्नमन अगणित श्रद्धालुजन यात्रा करते हैं। गंगोत्री, गोमुख पहुँचते हैं। कई तो तपोवन, नन्दनवन, शिवलिंग, कैलाश, स्फटिक स्वच्छ मानसरोवर, सुमेरु, स्वर्गारोहण के उपभोग तक दुर्गम मार्ग को पार करते हुए पहुँचते, जिसे हिमालय का हृदय कहा जाता है। यही ज्येष्ठ शुक्ल दशमी का दिन महाप्रज्ञा गायत्री का प्रिय दिव्य पुण्यदायी अवसर कदाचित् ही कहीं दृष्टिगोचर होते हैं ॥ १-८ ॥

पुण्ये पर्वणि तस्मिंश्च समायाता सुदूरतः ।
 संगता एकदा सर्वे मुनयश्च मनीषिणः ॥ ९ ॥
 गंगावतार-पुण्ये च स्थाने तैः शिविरायितैः ।
 पूर्वकाले समायाते स्नानं ध्यानमथापि च ॥ १० ॥
 जपतर्पण-मुख्यानि धर्म - कृत्यानि यान्यपि ।
 विहितानि मनोबुद्धि - कायसंस्कारकाण्यलम् ॥ ११ ॥
 प्रेमपूर्वकमेतेऽथ मिलितास्तु परस्परम् ।
 भवैः परिचिताः सर्वे संगतैः प्रथमं जनैः ॥ १२ ॥
 एकत्रितानि पूर्वं हि वन्यैः पर्वगतस्य तु ।

धर्मात्मनो जनस्यात्र कंदमूलफलान्यलम् ॥ १३ ॥
 आरोग्यदानि संप्राप्य सर्वैरेवौषधीनि वा ।
 इमानि नीता शान्तिं च बुभुक्षा मुनिभिः समैः ॥ १४ ॥
 वपुः शैथिल्यमेवं सा चित्तचञ्चलताऽपि च ।
 गते दूरं ततः सर्वे ज्ञानचर्चार्थमुद्यताः ॥ १५ ॥
 पर्वोत्सवानां लाभस्तु विद्यते हि महानयम् ।
 एतादृशानामाश्रित्य यत्तु पुण्यफलं भवेत् ॥ १६ ॥
 अधुना हृदि सर्वेषां हिमाद्रेर्देवतात्मनः ।
 उत्तराखंड - भागस्य ज्ञाताज्ञातानि तानि तु ॥ १७ ॥
 क्रमबद्धतया ज्ञातुं रहस्यान्युत्थिता नवा ।
 उत्कंठोत्तराखंडभूमिः पुण्यप्रदा श्रुता ॥ १८ ॥

टीका—उस पुण्यपर्व पर एक बार दूर-दूर से मुनि मनस्वी एकत्रित हुए। गंगा-अवतरण के पुण्य स्थान गंगोत्री-गोमुख के निकट डेरा डाला। पर्वकाल में सभी ने स्नान, ध्यान, जप, तर्पण आदि शरीर, मन व बुद्धि को संस्कारयुक्त बनाने वाले धर्मकृत्य किए। तत्पश्चात् एक दूसरे से प्रेमपूर्वक मिले। जो पहली बार नए सम्मिलित हुए थे, उनका परिचय प्राप्त किया। वनवासियों द्वारा इस पर्व पर आने वाले धर्मात्माओं के लिए पहले से ही कंद, मूल, फल एकत्रित कर रखे थे। आरोग्यदायी औषध स्वरूप इन्हें प्राप्त करके आगंतुकों ने भूख बुझाई, जिससे शरीर की थकान व मन की चंचलता जाती रही। सभी मिल-जुलकर ज्ञान चर्चा की तैयारी में लग गए। ऐसे पर्व समारोह का यही सबसे बड़ा लाभ है। पुण्यफल की उपलब्धि इसी आधार पर होती है। इस बार सभी के मन में देवात्मा हिमालय में उत्तराखंड क्षेत्र के ज्ञात-अज्ञात रहस्यों को क्रमबद्ध रूप से जानने की उत्कंठा उठ रही थी। चूँकि उत्तराखंड की देवभूमि पुण्यदायी है ऐसा सभी ने सुन रखा था ॥ ९-१८ ॥

उत्तराखंडयात्रास्तु कृता एभिरनेकशः ।
 स्थानानि तस्य दृष्टानि दर्शनीयानि यानि तु ॥ १९ ॥
 यथैतिहासिकान्यत्र सन्ति चान्यानि तानि च ।
 देवालया गुहा नद्यो निर्झरा शिखरा अपि ॥ २० ॥
 दृश्यदर्शनमात्रस्य कौतुकस्य हि केवलम् ।
 समाधानमनेनात्र जातमेव हि केवलम् ॥ २१ ॥
 रहस्यमस्य न ज्ञातं तत्तु कैश्चिद् यदुच्यते ।
 देवात्मेति जनैः शून्यं स्थानं पाषाणशोभितम् ॥ २२ ॥
 चत्वारि तानि धामानि देशकोणगतानि तु ।

६.२ प्रज्ञोपनिषद्

समुल्लसन्ति भव्यानि दूरदेशस्यतानि च ॥ २३ ॥
 उत्तराखंड - भूमौ तु बदरीवन - शोभिते।
 सन्ति चत्वरि धामानि समीपे संस्थितान्यहो ॥ २४ ॥
 तेषां दर्शनं पुण्यमवगाहसमुद्भवम्।
 अन्यतीर्थ - तुलायां तु मन्यतेऽधिकमुत्तमैः ॥ २५ ॥
 ऋषयो मुनयश्चात्र धावं धावं पुनः पुनः।
 समायान्ति तपस्तप्तुं तपः सिद्धा भवन्ति च ॥ २६ ॥
 सिद्धिरुच्चगताश्चात्रापेक्षया प्राप्नुवन्त्यपि।
 वैशिष्ट्यं हेतुमेतं च पर्वस्था ज्ञातुमुत्सुकाः ॥ २७ ॥

टीका—उत्तराखंड की यात्राएँ तो इन सभी ने कई बार की थी और उनके दर्शनीय ऐतिहासिक स्थानों, देवालयों, शिखरों, गुफाओं, नदी-निर्झरों को भी देखा, किंतु इतने से दृश्य-कौतूहल का समाधान मात्र हो सका था, जिसके कारण इन जनशून्य पाषाण समुच्चय को देवात्मा कहलाने का श्रेय मिला। चार धाम देश के चारों कोनों पर भव्य बने हैं और एक दूसरे से बहुत दूरी पर अवसीत हैं, पर बदरीवन से सुशोभित इस उत्तराखंड क्षेत्र में छोटे-छोटे स्थान में निकट रहने पर भी चार-धाम कहलाते हैं। उनके दर्शन-अवगाहन का पुण्य अन्य तीर्थों की तुलना में अत्यधिक माना गया है। ऋषि मुनि इसी क्षेत्र में तप-साधना करने के लिए दौड़ते हैं, उच्चस्तरीय तपश्चर्याएँ करते हैं और अपेक्षाकृत अधिक ऊँची सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं और अपेक्षाकृत अधिक ऊँची सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। इन विशेषताओं का कारण क्या है, यह जानने की इस महापर्व पर एकत्रित सभी को अनायास ही तीव्र इच्छा उठ खड़ी हुई ॥ १९-२७ ॥

एकत्रिते समाजे च वरिष्ठोऽभूत् नारदः।
 मनुष्यैरिव देवैश्च संबंधास्तस्य सुप्रियाः ॥ २८ ॥
 आयुष्यानुभवाभ्यां च श्रेष्ठः स लोक-सम्मतः।
 समन्वितेच्छया तस्य समुदायस्य तत्र च ॥ २९ ॥
 मुनिरुत्तुंग आहैनं बद्धहस्तो मुनिं कथम्।
 ऋषिभूमिस्तपोभूमिः सिद्धापुण्या च भूरियम् ॥ ३० ॥
 भूमिः समाना सर्वत्र तरवश्च जलाशयाः।
 सन्ति सर्वत्र तुल्याश्च ते वनस्पतयोऽपि तु ॥ ३१ ॥
 उत्तराखंड-भूमेस्तद् हिमाद्रेर्बोधितं कथम्।
 माहात्म्यमुत्तमं श्रेयः कारकं स्वर्गदं नृणाम् ॥ ३२ ॥
 रहस्यं ज्ञातुमेतच्च भृशमुत्कंठिता वयम्।
 अनुकम्प्याः समाधानकृपया भवता मुने ॥ ३३ ॥

टीका—इस एकत्रित समुदाय में सबसे वरिष्ठ नारद मुनि थे। मनुष्यों की तरह देवताओं के भी उनके निकटवर्ती संबंध थे। आयुष्य और अनुभव की दृष्टि से वही ज्येष्ठ थे। अस्तु, समुदाय की समन्वित इच्छा से अवगत मुनि उत्तुंग ने करबद्ध होकर देवर्षि से निवेदन किया कि इस क्षेत्र को ऋषि भूमि,

तपोभूमि, सिद्धभूमि, पुण्यभूमि कहे जाने का रहस्य समझाएँ, भूमि तो सर्वत्र एक ही है। जलाशय और वृक्ष, वनस्पति भी न्यूनाधिक मात्रा में सर्वत्र पाए जाते हैं, फिर क्या कारण है कि हिमालय के उत्तराखंड को ही इतना श्रेय मिला और उसे स्वर्गोपम माना गया? इस रहस्य को जानने के लिए हम सब अतीव इच्छुक हैं, सो मुनिवर कृपाकर समाधान करने का अनुग्रह करें ॥ २८-३३ ॥

तथ्यमूलं गतां तेषां संगतानां मनीषिणाम्।
 वीक्ष्यसूक्ष्मां मतिं मोदमगाद् देवर्षिराशु सः ॥ ३४ ॥
 उवाचाऽपि मया सार्धं भवन्तः प्रचलन्तु च।
 यद्यपि सर्वमेतच्च क्षेत्रं दिव्याभिरेव तु ॥ ३५ ॥
 क्षमताभिः सदापूर्णं स्वर्गलोकसमं मतम्।
 परं तत्राऽपि सन्त्येव स्थानान्यत्र तु कानिचित् ॥ ३६ ॥
 कृतान्युच्चात्मभिर्यत्र लोककल्याणकाम्यया।
 दिव्यानुभूति - संपन्नान्यनुसन्धानकान्यलम् ॥ ३७ ॥
 प्रयासैस्तेः समस्तश्च समाजो लाभमाप सः।
 धन्या जाता महर्षीणां दिव्येयं च परंपरा ॥ ३८ ॥
 स्थानेषु तेषु चाद्यापि तरंगाः प्रेरणामयाः।
 शब्दनित्यतया सन्ति विद्यमाना हि निश्चितम् ॥ ३९ ॥
 तान् ग्रहीतुं क्षमा ये च ते तु तैः साधयन्त्यपि।
 संपर्कं लाभमायान्ति तत्रताभिर्विभूतिभिः ॥ ४० ॥

टीका—देवर्षि उपस्थित मनीषियों के तथ्यों की गहराई तक पहुँचने वाली सूक्ष्मबुद्धि का परिचय प्राप्त कर बड़े प्रसन्न हुए और कहा, आप लोग मेरे साथ-साथ चलें। यों यह समूचा क्षेत्र ही स्वर्गलोक के समान दिव्य क्षमताओं से भरा-पूरा है, किंतु इसमें भी कुछ ऐसे स्थान हैं, जहाँ प्राचीनकाल में उच्चस्तरीय आत्माओं ने लोकमंगल के लिए अतिमहत्वपूर्ण अनुभव-अनुसंधान किए हैं। उन प्रयासों से समस्त मानव समाज लाभान्वित हुआ। साथ ही ऋषि परंपरा भी धन्य हुई। उन स्थानों में अभी वे वे प्रेरणा-तरंगें शब्द की नित्यता के कारण विद्यमान हैं, जिनमें उन्हें पकड़ सकने की क्षमता है, वे अभी भी उसके साथ संपर्क साधते और विद्यमान विभूतियों से लाभान्वित होते हैं ॥ ३४-४० ॥

नारद उवाच—
 स्रष्टा सृष्टिविधौ पृथ्वीं रचयामास यर्हि सः।
 तर्हि पूर्वसमुत्पन्नो हिमाद्रेर्भाग उत्तमः ॥ ४१ ॥
 यः स एव च लोकेऽस्मिन्नुत्तराखंड नामतः।
 प्रथित आदिदेशात्र देवान् वासाय सृष्टिकृत् ॥ ४२ ॥
 देववासात्समृतः स्वर्गो देवलोकोऽपि वा पुनः।
 आद्यशक्तिं स आराध्य गायत्रीं शक्तिमाप च ॥ ४३ ॥
 उपार्जनं तदाश्रित्य सृष्टिं कर्तुमभूत्क्षमः।
 सह तेन विधेयोऽभूत्सहयोगश्च दैवतः ॥ ४४ ॥

सृजनस्याथ पुष्टेश्च परिवर्तनकस्य च ।
दायित्वं त्रिविधं प्राप्तं गायत्री संश्रयात्सुरैः ॥ ४५ ॥
उपासनाविधौ तेऽत आदिष्टा ब्रह्मणा स्वयम् ।
युक्तास्ते तत आदेशं पूर्णं कर्तुं च सत्वरम् ॥ ४६ ॥
ब्रह्मवर्चोमयं रूपं दर्शयामास सा निजम् ।
वेदमाता देवमाता विश्वमातेति यज्जगुः ॥ ४७ ॥

टीका—नारद जी ने कहा, ब्रह्मा जी ने सृष्टि की रचना करते हुए जब पृथ्वी बनाई, तब सर्वप्रथम हिमालय का वह भाग विनिर्मित हुआ, जिसे हिमालय का उत्तराखंड कहते हैं। सृजे हुए देवताओं को उस पर निवास करने के लिए सृष्टि कर्ता द्वारा कहा गया। उस क्षेत्र का नाम देवलोक एवं स्वर्ग रखा गया। ब्रह्माजी को सृष्टि सृजन की क्षमता आद्यशक्ति गायत्री की उपासना करने से प्राप्त हुई थी। उसी उपार्जन के आधार पर वे सृष्टि बना सकने में समर्थ हो रहे हैं। देवताओं को उनके कार्य में हाथ बँटाना था। सृजन, पोषण और परिवर्तन के त्रिविध उत्तरदायित्वों को वहन करने की सामर्थ्य देवताओं को भी महाप्रज्ञा गायत्री का आश्रय लेने से ही मिल सकती थी। अस्तु, उन सभी को उपासना यज्ञ में लगा दिया गया। देवगण उस निर्देशन को पूरा करने में जुट गए। उन्हें भगवती ने देव वेदमाता, विश्वमाता के रूप में ब्रह्मवर्चस से युक्त दर्शन दिया ॥ ४१-४७ ॥

देवानां च तपश्चर्या - कारणाद् गरिमाऽस्य तु ।
स्वर्गलोकोक्तिरूपेण गदिता चैतिहासिकैः ॥ ४८ ॥
क्षेत्रेऽस्मिंस्ते स्थिताः सर्वे शिखराः पावनाः शुभाः ।
सुमेरुः शिवलिंगश्च कैलासः स्वर्गगोऽथ च ॥ ४९ ॥
सुरोद्यानानि तान्यत्र नंदनादीनि संति च ।
तपोवनादिसंज्ञानि पुष्पोद्यानानि वै क्रमात् ॥ ५० ॥
पुण्यतोया वहन्तीह देवनद्योऽति निर्मलाः ।
शरीराणि तु देवानां स्थूल-सूक्ष्माण्यलं स्वतः ॥ ५१ ॥
समर्थानि बभूवुस्तच्चेतना क्षेत्र - संभवाः ।
विभूतीः सूक्ष्मतन्वा ते स्थूलया भौतिकीस्तथा ॥ ५२ ॥
तन्वा जगृहुरन्तेऽस्य मनुजाः सृष्टिमागताः ।
ऋषिरूपे च सृष्टिः सा मुनिरूपे तथोदिता ॥ ५३ ॥
वैज्ञानिका अभूवन्त ऋषयो मुनयस्तु ते ।
निर्धारका अभूवन्त शांता दान्ताः प्रचारकाः ॥ ५४ ॥
एभ्यो निवासभूमिश्च निश्चिताधस्ततः शुभे ।
अगम्ये प्रोन्नते क्षेत्र उत्तराखंड संज्ञके ॥ ५५ ॥

टीका—देवताओं की तपश्चर्या से इस क्षेत्र की गरिमा स्वर्गलोक कहकर बखानी गई। उसी क्षेत्र में सुमेरु, शिवलिंग, कैलास, स्वर्गरोहण आदि शिखर शोभायमान हैं। यही तपोवन, नंदनवन जैसे पुष्पोद्यान हैं। पुण्य सलिला स्वच्छ देव सरिताएँ उसी क्षेत्र से निःसृत होती हैं। देवताओं के सूक्ष्म और स्थूल

दोनों शरीर सक्षम थे, वे चेतना क्षेत्र की विभूतियाँ सूक्ष्म शरीर से और भौतिक उपलब्धियों के लिए स्थूल शरीर का उपयोग करते रहे। इसके उपरांत मनुष्यों को सृजा गया। उनकी प्रथम संरचना पवित्र ऋषि-मुनियों के रूप में हुई। ऋषि वैज्ञानिक थे और शांत-दांत मुनि निर्धारक प्रचारक। इस समुदाय को स्वर्ग वाले उच्च अगम्य क्षेत्र से नीचे वाले भाग में बसाया गया। उसी को उत्तराखंड कहते हैं ॥ ४८-५५ ॥

देवता अंतरिक्षे च पदाथव्याप्तिभागतः ।
साधनानि निजान्यत्र समाचिन्वन्ति ते त्वलम् ॥ ५६ ॥
महर्षिवर्गस्य कायस्तु स्थूलेन्द्रिय युतो ह्यभूत् ।
जलानवायुवस्त्रादि - निवासेन्धनरूपतः ॥ ५७ ॥
साधनान्यनिवार्याणि जातायेषां कृते त्विह ।
तन्निवासस्थले स्रष्टा समुत्पन्नं व्यधादिदम् ॥ ५८ ॥
निवसंतु सुखेनैते सृष्टेरस्या व्यवस्थितौ ।
यदपेक्ष्यं प्रयासं ते तत्प्रकुर्वन्तु सत्वरम् ॥ ५९ ॥
व्यवस्थायै च सृष्टेस्तदृषीणां बहूपेक्षितम् ।
अर्जनस्याभिवृद्धेश्च ग्राह्यं दायित्वमुत्तमम् ॥ ६० ॥
नियन्त्रणस्य चाप्यत्रापेक्षया शक्तिरतो बहु ।
लग्ना उपार्जने योग - तपोभ्यां ते निरंतरम् ॥ ६१ ॥
योगेनात्रात्मविज्ञानं तपसा च पदार्थगम् ।
विज्ञानं सूत्ररूपेण जातं हस्तगतं ततः ॥ ६२ ॥
ऋद्धीनामथ सिद्धीनां विपुलो निधिरुत्तमः ।

उपलब्धस्तदाश्रित्य जगतां भूतये भृशम् ॥ ६३ ॥
टीका—देवता अंतरिक्ष में संव्याप्त दिव्य पदार्थ संपदा से अपने निर्वाह साधन आकर्षित कर लेते थे, पर ऋषि वर्ग की काया स्थूल स्तर की इंद्रिय प्रधान थी। उसे अन्न, जल, वायु, वस्त्र, निवास, ईंधन उपकरण आदि की आवश्यकता थी। अस्तु, उनके निवास क्षेत्र में स्रष्टा ने इन सभी साधनों को उपजाया, ताकि वे सुखपूर्वक रह सकें और सृष्टि व्यवस्था के लिए जो जुटाना आवश्यक था, उसके लिए तत्परतापूर्वक प्रयास करते रह सकें। ऋषियों को सृष्टि व्यवस्था के लिए बहुत कुछ करना था। उपार्जन, अभिवर्द्धन और नियंत्रण के अनेकानेक उत्तरदायित्व उन्हें सँभालने थे। इसके लिए सामर्थ्य की आवश्यकता थी, सो उसे योग और तप के माध्यम से अर्जित करने वे लोग जुट गए। योग से आत्मविज्ञान और तप से पदार्थ विज्ञान के सूत्र हस्तगत हुए। उनके सहारे ऋद्धियों और सिद्धियों का विपुल भंडार विश्व कल्याण के लिए उपलब्ध कर सके ॥ ५६-६३ ॥

बहुल्लोकान् ससर्जायं नक्षत्राणि ग्रहानपि ।
ब्रह्मा तु दृश्यरूपेण पदार्था एव तानि तु ॥ ६४ ॥
परमंतस्तु सर्वेषां चेतना सुनियोजिता ।
जडचेतनयोगाच्च सृष्टिरेषा विनिर्मिता ॥ ६५ ॥

६.४ प्रज्ञोपनिषद्

देवकर्तव्यमासीच्च ब्रह्मांडं सचराचरम् ।
 एकसूत्रगतं कर्तुं दानादाने नियोजिते ॥ ६६ ॥
 पृथिव्या सहयोक्तुं च ब्रह्मांडस्य निरन्तरम् ।
 अशरीरगताप्याप्ता सुविधा च शरीरगा ॥ ६७ ॥
 ग्रहपिंडैरिवैते च योग्यैरिह नरैः सह ।
 कृत्वा संपर्कमेतैश्च कुर्वते लाभगानपि ॥ ६८ ॥

टीका—ब्रह्माजी ने अनेक लोक-लोकांतरों का सृजन किया अगणित ग्रह-नक्षत्र बनाए वे दृश्य रूप में पदार्थ थे, पर उनके अंतराल में विचारवान चेतना का समावेश किया गया। इस प्रकार सृष्टि जड़-चेतन के समन्वय से बनी। देवताओं का कार्य क्षेत्र उस समस्त चराचर ब्रह्मांड को एक सूत्र में बाँधे रहना था। साथ ही यह भी कि वे पृथ्वी के साथ ब्रह्मांड का आदान-प्रदान का क्रम सुनियोजित रखे रहें। उन्हें शरीर और अशरीरी स्तर की दोनों ही सुविधाएँ प्राप्त हुई। वे ग्रह-पिंड की तरह मनुष्यों के साथ भी संपर्क साधते और जो उपयुक्त होते, उन्हें पात्रता के अनुरूप लाभान्वित करते रहते हैं ॥ ६४-६८ ॥

निश्चितं तत्रकर्तव्यमृषीणां देवसंगतिः ।
 तदाप्तैरनुदानैश्च धरित्री वैभवं तथा ॥ ६९ ॥
 मानवानां च तद्वर्चो वर्द्धितुं तु निरन्तरम् ।
 स्वतस्ते पूर्णरूपेण चात्मारामास्तु निःस्पृहा ॥ ७० ॥
 अंतराले जगत्यास्तु सन्त्यसंख्या विभूतयः ।
 प्रच्छन्नाभ्यश्च गृह्णन्ति जीवा अन्विष्य ताः स्वयम् ॥ ७१ ॥
 अज्ञातानां रहस्यानां मार्गणे प्राप्तिकर्मणि ।
 समर्था ऋषयः सर्वे स्तरस्तेषां स ईदृशः ॥ ७२ ॥
 स्वस्या विशिष्टतायाश्च कारणात्ते क्षमाः समे ।
 प्रकटीकर्तुमत्यर्थं सुगुप्तमपि चाञ्जसा ॥ ७३ ॥
 अदृश्यं प्रष्टुमेते च समर्थाः प्राप्तुमप्यथ ।
 अप्राप्यमस्ति सामर्थ्यं तपः प्राप्तं महत्तमम् ॥ ७४ ॥
 तपः शक्त्या पदार्थेषु जायते परिपक्वता ।
 प्रखरत्वमिहात्यर्थं वर्द्धतेऽपि तथैव च ॥ ७५ ॥

टीका—ऋषियों का कार्य देवताओं के साथ संपर्क साधने और उनके अनुदानों से धरती के वैभव और मनुष्यों के वर्चस्व में अभिवृद्धि करने का नियत हुआ। वे स्वयं में पूर्णरूपेण आप्तकाम व निःस्पृह थे। प्रकृति के अंतराल में अगणित विभूतियाँ हैं, वे सभी प्रकट नहीं हैं। आवश्यकता के अनुरूप प्राणी उसमें से खोजते और प्राप्त करते रहते हैं। जो अविज्ञात और रहस्यमय हैं, उसे खोजने और प्राप्त करने की सामर्थ्य ऋषि स्तर के लोगों में होती है। वे अपनी विशिष्टता के कारण अप्रकट को प्रकट कर सकते हैं। अदृश्य को देख सकते हैं। अप्राप्त को पा सकते हैं। यह विशेषता उन्हें तप बल से प्राप्त होती है। तपाने से हर वस्तु में परिपक्वता आती

और प्रखरता बढ़ती है ॥ ६९-७५ ॥

अस्ति प्रयोगशालैव मानवस्य वपुः समम् ।
 तस्मिन् सृष्टिरहस्यानां भूतेः प्राप्तिकराण्यपि ॥ ७६ ॥
 उपकरणान्यलं लग्नान्याश्चर्यजनकानि तु ।
 सामान्यास्तु जनाः लोकयात्रैक-रुचिकाः समे ॥ ७७ ॥
 उपलब्धस्य एतेषां सीमितास्तु तथैव ताः ।
 परं दृष्टिर्विशालास्ति लक्ष्यं च महदुत्तमम् ॥ ७८ ॥
 कार्यक्षेत्रमतिव्याप्तं येषां ते विश्ववैभवम् ।
 कुर्वते हस्तगं स्वेन मनोयोगेन नित्यशः ॥ ७९ ॥
 भौतकाध्यात्मिक - क्षेत्रविज्ञान - ज्ञानिनां सदा ।
 भवत्यायोजितं चास्यां दिशायां पौरुषं भृशम् ॥ ८० ॥
 स्थिरलक्ष्यानुरूपाणि साफल्यानि सदैव ते ।

नराश्चर्यकराण्यत्र प्राप्नुवन्ति पदे पदे ॥ ८१ ॥
 टीका—मानव शरीर एक समग्र प्रयोगशाला है। उसमें इस सृष्टि के सभी रहस्यों को समझने और समस्त वैभवों को उपलब्ध करने के विस्मयकारी उपकरण लगे हैं। सामान्य-जन निर्वाह भर में रुचि लेते हैं। इसलिए उनकी उपलब्धियाँ भी उतनी ही सीमित रहती हैं, किंतु जिनकी दृष्टि व्यापक है लक्ष्य महान व उत्तम है और कार्यक्षेत्र व्यापक है। ऐसे महान मानव इसी संसार में पग-पग पर विद्यमान विभूति संपदा में से अपने प्रबल मनोयोग द्वारा बहुत कुछ प्राप्त कर लेते हैं। भौतिक और आत्मिक क्षेत्र के विज्ञानियों का पुरुषार्थ इसी दिशा में नियोजित रहता है और वे निर्धारित लक्ष्य के अनुरूप पद-पद पर आश्चर्यजनक सफलताएँ प्राप्त करते हैं ॥ ७६-८१ ॥

विभूतिनिधयो देवाः संति सत्यात्रमार्गणे ।
 लग्ना भवन्ति प्राप्यैतान् कृतार्थान् कुर्वतेऽपि च ॥ ८२ ॥
 पात्रतावर्द्धनं चात्र देवाराधनमुच्यते ।
 एतदर्थमिहोक्तास्तु सन्त्यायज्ञजपादयः ॥ ८३ ॥
 लभन्तेऽलभ्यमप्येवमृषयः प्रापयन्ति तत् ।
 यत्र यत्रास्ति चास्येहानिवार्यत्वं प्रयत्नतः ॥ ८४ ॥
 सामान्यास्तु जना लोभमोहयोर्बन्धनैरथ ।
 अहंकारस्य तस्यापि बद्धास्ते त्रिविधैरपि ॥ ८५ ॥
 पशूनामिव चैतेषां जीवनं पक्षिणामिव ।
 निद्राऽऽहाराविहारादिमात्रमत्राश्रयन्ति च ॥ ८६ ॥
 ऋषिकल्पास्तु ये धन्या उच्चात्मानो नरा भुवि ।
 मान्यता भावनाऽऽकांक्षाभिर्भवन्त्युच्चबुद्धयः ॥ ८७ ॥
 चिन्तनेऽथ चरित्रे च व्यवहारे निजे सदा ।
 आदर्शान् कुर्वते नूनं समाविष्टान्निरन्तरम् ॥ ८८ ॥
 जनाः किं कुर्वते नैतज्जातु पश्यन्ति ते न च ।
 प्रभाविता भवन्त्येते तेषां गतिविधेरपि ॥ ८९ ॥
 परं स्वं गरिमाणं च जानन्तः सञ्चलन्त्यलम् ।

तस्मिन् मार्गेऽनुगन्तृणां यतः श्रेयो भवेदलम् ॥ ९० ॥

स्तरस्यैतादृशस्यैव व्यक्तित्वस्य तथैव च ।

स्वभावस्य विनिर्माणं तपोयोगोद्भवं फलम् ॥ ९१ ॥

टीका—देवता विभूतियों के भंडार हैं, वे सत्पात्रों को तलाशते और उन्हें निहाल करते रहते हैं। पात्रता का संवर्द्धन ही देवाराधन है। इसी के लिए संध्या, जप, यज्ञ, दानादि का विधान किया गया है। ऋषि अलभ्य को अर्जित करते हैं और जहाँ उसकी आवश्यकता है, वहाँ स्वयं ही प्रयत्नपूर्वक पहुँचाते हैं। सामान्यजन जहाँ लोभ, मोह और अहंकार के त्रिविध भव-बंधनों से जकड़े रहते और पशु-पिशाचों जैसा आहार-विहार-निद्रा आदि मात्र का जीवनयापन करते हैं, किंतु ऋषिकल्प आत्माएँ अपनी मान्यताओं, भावनाओं, आकांक्षाओं और विचारणाओं को उच्चस्तरीय बना लेते हैं। चिंतन, चरित्र और व्यवहार में आदर्शों का समावेश करते हैं। लोग क्या करते हैं, इसे नहीं देखते और न उनकी गतिविधियों से प्रभावित होते हैं, वरन अपनी गरिमा को समझते हुए उस मार्ग पर चलते हैं, जिसका अनुगमन करने वाले असंख्यों को श्रेयाधिकारी बनने का सुयोग मिल सके। इस स्तर का व्यक्तित्व और स्वभाव विनिर्मित करना ही योग-साधना एवं तपश्चर्या का उद्देश्य है ॥ ८२-९१ ॥

साफल्यं यावदेवात्र प्राप्नुयादात्मनिर्मितेः ।

योऽपि सूक्ष्मे जगत्पश्य प्रवेशः स्यान्न दुर्गमः ॥ ९२ ॥

न च प्राप्तुं विभूतीस्ताः काठिन्यमनुगच्छति ।

योगेन मानसं ये तु तपोभिः कायिकं तथा ॥ ९३ ॥

कुर्वते पुरुषार्थं ते सिद्धिर्ऋद्धीर्ब्रजन्त्यलम् ।

समुद्रतलगन्तारो लभन्ते मणिमौक्तिकान् ॥ ९४ ॥

साधनां प्रवदन्त्येवं पुरुषार्थं महाजनाः ।

ऋषयो मुनयः संति साधनारतमानसाः ॥ ९५ ॥

तेषामुपार्जनैर्विश्वं भवेत्लाभान्वितं सदा ।

आदर्शचरितानां च देवमानवसन्नृणाम् ॥ ९६ ॥

श्लाघ्यते भुवि सर्वत्र परार्थैकरतिर्नृभिः ।

सम्मानमात्मसन्तोषं यान्ति दैवमनुग्रहम् ॥ ९७ ॥

टीका—आत्मनिर्माण की, जो जितनी सफलता प्राप्त कर लेता है, उसके लिए सूक्ष्म जगत में प्रवेश करने और बहुमूल्य विभूतियाँ हस्तगत करने में अधिक कठिनाई नहीं पड़ती। योग साधना को मानसिक और तपश्चर्या को शारीरिक पुरुषार्थ करने वाले ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं। समुद्र में गहरे गोते लगाने वाले ही महापुरुष साधना कहते हैं। ऋषि मुनि साधनारत रहते हैं। उनके उपार्जन से समस्त संसार लाभान्वित होता है। अस्तु, इन आदर्श चरित्र वाले देवमानवों की परमार्थ परायणता सर्वत्र सराही जाती है, उन्हें आत्मसंतोष, लोकसम्मान और दैवी-अनुग्रह की कमी नहीं रहती ॥ ९२-

९७ ॥

यथा नाविकचातुर्यं-साहसाभ्यामसंख्यकाः ।

नद्याः पारं जना यान्ति तथैषां सर्व एव हि ॥ ९८ ॥

पुरुषार्थो मुनीनां स ऋषीणामपि पूर्णतः ।

समस्तं विश्वमेवात्र युज्यते कर्तुमुन्नतम् ॥ ९९ ॥

तेषां सम्पर्कगा मर्त्या भवन्त्यत्रोन्नतास्तथा ।

अभियान्ति च सर्वेषु लक्ष्येष्वेते दृढक्रमाः ॥ १०० ॥

कल्पवृक्षेणलोकास्तान् मणिना पारदेन च ।

तुलयन्ति जना लोके सर्वदैतादृशान् भृशम् ॥ १०१ ॥

समीपवर्तिनस्ते तु चंदनस्य द्रुमा इव ।

गौरवं ददति स्वातौवर्षेवान्योपकारकाः ॥ १०२ ॥

टीका—जिस प्रकार नाविक की प्रवीणता और साहसिकता के सहारे असंख्यों को नदी पार करने का लाभ मिलता है, उसी प्रकार ऋषियों-मुनियों का पुरुषार्थ और परमार्थ समस्त संसार को सुखी-समुन्नत बनाने में प्रयुक्त होता है। उनके संपर्क में आने वाले ऊँचे उठते और क्रमबद्ध रूप से आगे बढ़ते हैं, उन्हें कल्पवृक्ष पारस की उपमा दी जाती है। चंदन वृक्ष की तरह वे समीपवर्तियों को गौरव प्रदान करते हैं। स्वाति वर्षा की तरह उनका लाभ कितनों को ही मिलता है ॥ ९८-१०२ ॥

नारदः पुनरेवैतान् सम्बोध्याह बलादिव ।

उत्तराखंड - भूमेस्तु गौरवं ज्ञातुमुत्सुकाः ॥ १०३ ॥

भवन्तस्तेन शृण्वंतु याऽत्रत्या तु विशेषता ।

त्रिभिर्भूमेर्देवभूमेः कारणादस्ति निश्चितम् ॥ १०४ ॥

वैश्वानरे यथादीप्ते जायते सा पवित्रता ।

ऊष्मजोत्पत्तिरप्येवं संपूर्णं क्षेत्रमुत्तमम् ॥ १०५ ॥

इदं गौरवतां यातं वासादुच्चात्मनां नृणाम् ।

अतोऽत्रैव तपस्तप्तुमायाता ऋषिपुंगवाः ॥ १०६ ॥

नरनारायणावत्र तपस्तावृषि सत्तमौ ।

कुर्वन्ते च तयोर्योगान्नरो नारायणो भवेत् ॥ १०७ ॥

टीका—नारद जी ने पुनः कहा हे भद्रजनो जिस उत्तराखंड की गरिमा आप लोग जानना चाहते हैं, उसमें जो कुछ विशेषता है, वह देवताओं और ऋषियों की क्रीड़ाभूमि रहने के कारण ही उत्पन्न हुई है। अग्नि के प्रज्वलन के वातावरण में जिस प्रकार ऊष्मा व पवित्रता भर जाती है, उसी प्रकार यह समूचा क्षेत्र उच्चस्तरीय आत्माओं को क्रीड़ा-भूमि रहने के कारण गौरवशाली बना है, इसीलिए बड़े-बड़े ऋषि यहीं तपस्या करने आए। ऋषि श्रेष्ठ नर-नारायण अनादिकाल से यहाँ तपस्या में रत हैं, उनके संपर्क से नर मात्र नारायण बन जाता है ॥ १०३-१०७ ॥

सायं समय आयात इत्थं चर्चार्तेषु तु ।

समेष्टेव विरामोऽतः सोऽपेक्ष्यो नितरामिह ॥ १०८ ॥

६.६ प्रज्ञोपनिषद्

जिज्ञासा हृदये नृणां सर्वेषामेव साध्यभूत् ।
ज्ञातुमत्रत्यभागानां विवृत्तिं च रहो भृशम् ॥ १०९ ॥
अत आगामिवारेषु द्रष्टुं दर्शयितु तथा ।
योजना निश्चिताद्यैष प्रसंगोऽगाद् विरामताम् ॥ ११० ॥
टीका—चर्चा कहते-सुनते सायंकाल हो गया । अस्तु,

वार्ता को विराम देना आवश्यक था । जिज्ञासा सभी के मन में
इस क्षेत्र के अनेक स्थानों का विवरण और रहस्य जानने की
थी । सो अगले दिनों उन्हें देखते हुए समझने-समझाने की
योजना बनी । आज का प्रसंग यहीं समाप्त हो गया ॥ १०८-
११० ॥

॥ इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदि देव संस्कृतिखंडे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युग दर्शन युग साधना प्रकटीकरणयोः,
महर्षि नारदप्रतिपादिते देवात्मा हिमालयः इति प्रकरणो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥